Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

इतिहास (वैकल्पिक विषय)

आधुनिक भारत (भाग–1)

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CSHS05

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

इतिहास (वैकल्पिक विषय)

आधुनिक भारत (भाग–1)

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 011-47532596, 8750187501
टोल फ्री : **1800-121-6260**
Web : www.drishtiias.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिए निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPSC DLP

विषय सूची (Contents)

1.	भारत में अंग्रेज़ी शासन की स्थापना	5–25
2.	ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति	26–34
3.	ब्रिटिश राज की प्रारंभिक संरचना एवं प्रशासनिक संगठन	35–55
4.	ब्रिटिश भू-राजस्व प्रशासन	56–64
5.	ब्रिटिश शासन का आर्थिक प्रभाव	65–83
6.	आधुनिक उद्योगों का सीमित विकास	84–99
7.	ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का आर्थिक प्रभाव	100–110
8.	ब्रिटिश सामाजिक-सांस्कृतिक नीतियाँ	111–118
9.	ब्रिटिश भारत में आधुनिक शिक्षा	119–140

अध्याय
1

भारत में अंग्रेज़ी शासन की स्थापना
(Establishment of British Rule in India)

1.1 भारत में यूरोपीय कंपनियों का आगमन	1.4 आंग्ल-मैसूर संबंध
1.2 बंगाल पर ब्रिटिश नियंत्रण	1.5 सिंध का विलय
1.3 मराठों पर ब्रिटिश नियंत्रण	1.6 पंजाब का अधिग्रहण

1.1 भारत में यूरोपीय कंपनियों का आगमन
(The Arrival of European Companies in India)

भारत के सामुद्रिक रास्तों की खोज 15वीं सदी के अंत में हुई जिसके बाद यूरोपियों का भारत आगमन आरंभ हुआ। यद्यपि यूरोपीय भारत के अलावा भी बहुत स्थानों पर अपने उपनिवेश बनाने में कामयाब हुए पर इनमें से लगभग सभी के आकर्षण का मुख्य केंद्र भारत ही था। सत्रहवीं सदी के अंत तक यूरोपीय एशिया के कई स्थानों पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुके थे और अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में वे कई जगहों पर काबिज़ हो गए थे। सम्पूर्ण भारत पर उन्नीसवीं सदी में जाकर ही अंग्रेज़ों का एकाधिकार हो पाया था।

भारत की समृद्धि को देखकर पश्चिमी देशों में भारत के साथ व्यापार करने की इच्छा पहले से थी। यूरोपीय नाविकों द्वारा सामुद्रिक मार्गों का पता लगाना इन्हीं लालसाओं का परिणाम था। तेरहवीं सदी के आस-पास तुर्की साम्राज्य का आधिपत्य भूमध्य सागर और उसके पूर्वी मार्गों पर हो गया। फलस्वरूप यूरोपीय देशों के व्यापारियों हेतु स्थल मार्गों से एशिया के देशों तक पहुँचना मुश्किल हो गया। इस कारण यूरोपीय देशों को भारतीय माल की आपूर्ति ठप पड़ गई। इटली के व्यापारियों को इससे बहुत लाभ हुआ क्योंकि कुछ व्यापारी तस्करी या फिर चोरी-छिपे एशिया का सामान इटली के रास्ते यूरोप के भीतरी भागों तक पहुँचाने लगे थे, उस पर भी इटली के वेनिस नगर में चुंगी देना उनको रास नहीं आता था। समुद्र तटीय राष्ट्रों के कई शासकों ने अपने नए राष्ट्रों के खोज अभियान में नाविकों की मदद की। इसी क्रम में स्पेन की रानी इसाबेला की मदद से इटली का कोलंबस भारत का पता लगाते हुए अमेरिका पहुँच गया। भारत पहुँचने वालों में पुर्तगाली सबसे पहले थे। इसके बाद डच आए और डचों ने पुर्तगालियों से कई लड़ाइयाँ लड़ीं। भारत के अलावा श्रीलंका में भी डचों ने पुर्तगालियों को खदेड़ दिया पर डचों का मुख्य आकर्षण भारत न होकर दक्षिण-पूर्व एशिया के देश थे। अतः उन्हें अंग्रेज़ों ने पराजित किया, जो मुख्यतः भारत पर अधिकार करना चाहते थे। आरंभ में तो इन यूरोपीय देशों का मुख्य काम व्यापार ही था, परंतु भारत की राजनीतिक स्थिति को देखकर उन्होंने यहाँ साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक नीतियाँ अपनानी आरंभ कीं।

पुर्तगाली *(Portuguese)*

भारत पहुँचने वालों में पुर्तगाली ही सबसे पहले थे। 1498 में पुर्तगाल के वास्कोडिगामा ने भारत के पश्चिमी तट पर स्थित कालीकट पर कदम रखा। उसने कालीकट के राजा से व्यापार का अधिकार प्राप्त कर लिया पर वहाँ सालों से स्थापित अरबी व्यापारियों ने उसका विरोध किया। 1499 में स्वदेश लौटते समय वह भारत से मसाले ले गया था जो 60 गुना अधिक दाम पर बिके। वास्कोडिगामा के वापस पहुँचने के बाद ही लोगों को भारत के सामुद्रिक मार्ग की जानकारी मिली।

1501 ई. में वास्कोडिगामा दूसरी बार फिर भारत आया और उसने कन्नानौर/कन्नूर (Cannanore/Kannur) में एक व्यापारिक फैक्ट्री स्थापित की। व्यापारिक संबंधों की स्थापना हो जाने के बाद भारत में कालीकट, कन्नानौर और कोचीन प्रमुख पुर्तगाली केंद्रों के रूप में उभरे। अरब व्यापारी पुर्तगालियों की सफलता और प्रगति से जलने लगे और इसी जलन ने स्थानीय राजा जमोरिन और पुर्तगालियों के बीच शत्रुता को जन्म दिया। यह शत्रुता इतनी बढ़ गई कि उन दोनों के बीच सैन्य संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई। राजा जमोरिन को पुर्तगालियों ने हरा दिया और इसी जीत के साथ पुर्तगालियों की सैनिक सर्वोच्चता स्थापित हो गई।

- मध्य एशिया से संपर्क रखने के लिये यह क्षेत्र सामरिक और भौगोलिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था।
- 1843 में सिंध विलय के पश्चात् भारत में अंग्रेज़ी राज्य की सीमा असमान हो गई थी। पंजाब पर अधिकार से साम्राज्य हिन्दूकुश पर्वत शृंखला तक **प्राकृतिक सीमा** प्राप्त कर सकता था।
- रणजीत सिंह के पश्चात् पंजाब में राजनीतिक अस्थिरता थी इस समय तक प्रतिद्वंद्वी सिक्ख सरदार अंग्रेज़ों से बातचीत कर अपनी स्थिति मज़बूत करने में लगे थे।
- अत: **1845-46 ई. में प्रथम आंग्ल-सिक्ख युद्ध** हुआ जिसमें अंग्रेज़ों ने **लाहौर** पर अधिकार किया और वहाँ ब्रिटिश सेना की तैनाती कर दी गई। कालांतर में अंग्रेज़ों ने लाहौर दरबार में **भैरोवाल की संधि** की, जिसके तहत प्रत्येक विभाग पर उनका नियंत्रण कायम हो गया।
- **1848 ई.** में नया गवर्नर जनरल **डलहौजी** आया। इस समय अंग्रेज़ों ने सिक्खों पर ब्रिटिश विरोधियों का साथ देने का आरोप लगाया और 1849 ई. में पंजाब को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

1. "मराठा राज्य का विघटन आंतरिक दबाव के फलस्वरूप हुआ था।" समालोचनात्मक परीक्षण कीजिये। **UPSC (Mains) 2017**
2. पंजाब को समामेलन की ओर ले जाने वाली ब्रिटिश साम्राज्यीय शक्ति के प्रमुख विचारों को रेखांकित कीजिये। **UPSC (Mains) 2017**
3. भारत में क्षेत्रीय साम्राज्य स्थापित करने की फ्राँसीसी महत्त्वाकांक्षा पर टिप्पणी कीजिये। **UPSC (Mains) 2016**
4. प्लासी के युद्ध के पश्चात् भारत ने किस प्रकार मध्य युग से आधुनिक युग में प्रवेश किया? **UPSC (Mains) 2016**
5. "पंजाब का समामेलन, महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् आरंभ की गई एक व्यापक उत्तर-पश्चिमी सीमांत नीति का भाग था।" समालोचनात्मक परीक्षण कीजिये। **UPSC (Mains) 2015**
6. "अंग्रेज़ों की भारत की विजय प्लासी के साथ सम्पूर्ण नहीं हुई थी। अगर अंग्रेज़ों को भारत में किसी पश्चातकालीन युद्ध में पूरी तरह से पराजित कर दिया गया होता, तब प्लासी (का युद्ध) भारत के इतिहास में एक छोटा किस्सा बनकर रह जाता।" समालोचनात्मक परीक्षण कीजिये। **UPSC (Mains) 2014**
7. अठारहवीं सदी में अंग्रेज़ों ने किस प्रकार बंगाल को जीता? वे कौन-सी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने उनकी सहायता की थी?
8. प्लासी के निर्णय को अंग्रेज़ों द्वारा प्राप्त बक्सर की विजय ने पुष्ट कर दिया। टिप्पणी कीजिये।
9. अंग्रेज़ों के विरुद्ध मराठों की असफलता के कारणों को स्पष्ट कीजिये।
10. उन परिस्थितियों का उल्लेख कीजिये जिसके फलस्वरूप तृतीय मैसूर युद्ध हुआ।
11. "हमने अपने मित्रों को शक्तिशाली बनाए बगैर अपने दुश्मनों को बुरी तरह दुर्बल कर दिया।" टिप्पणी कीजिये।

अध्याय
2

ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति
(British Imperialist Policy)

2.1 सहायक संधि
2.2 डलहौज़ी की साम्राज्यवादी नीति
2.3 देशी रियासतों के प्रति ब्रिटिश नीति

2.1 सहायक संधि *(Subsidiary Alliance)*

वेलेज़ली के आगमन से पूर्व ब्रिटिश साम्राज्यवाद की कोई व्यापक स्पष्ट नीति नहीं रही। कार्नवालिस और शोर की अहस्तक्षेप की नीति से कंपनी के हितों की सुरक्षा पर्याप्त नहीं थी। वेलेज़ली का मुख्य उद्देश्य **कंपनी को भारत की सर्वोच्च शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करना था** और इसमें मुख्य बाधा थी **फ्राँसीसियों का बढ़ता प्रभाव।** अत: फ्राँसीसियों के बढ़ते प्रभाव को नष्ट करना भी वेलेज़ली की नीति का उद्देश्य था। वस्तुत: जब यूरोप में फ्राँसीसी क्रांति हो रही थी और नेपोलियन भारत पर हमला करने के उद्देश्य से मिस्र पर अधिकार करने की कोशिश कर रहा था, वहीं दूसरी ओर टीपू जैसे भारतीय शासक फ्राँसीसियों से गठबंधन कर रहे थे। फलत: ब्रिटिश खेमे को एक **ऐसी राजनीतिक प्रणाली की ज़रूरत थी जो भारतीय शक्तियों से फ्राँसीसियों को दूर कर सके,** साथ ही **भारतीय शक्तियों को ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं का ग्राहक बना सके।** उसकी यह साम्राज्यवादी योजना सहायक संधि के रूप में सामने आई।

सहायक संधि प्रणाली का सर्वप्रथम प्रयोग फ्राँसीसी गवर्नर **डूप्ले** (Dupleix) ने किया था। उसने भारतीय नरेशों को सैनिक सहायता देने के बदले उनसे **धन लेने** की प्रथा की शुरुआत की थी। अंग्रेज़ों ने भी इस प्रथा को स्वीकार किया तथा **क्लाइव** एवं उसके बाद के गवर्नर जनरलों ने इस प्रणाली का उपयोग किया। परंतु सहायक संधि जिस रूप में जानी जाती है उसकी विस्तृत व्याख्या सर्वप्रथम वेलेज़ली ने की। उसने इसे अंग्रेज़ी राज्य के विस्तार का साधन बनाया।

विशेषताएँ/प्रावधान *(Characteristics/Provisions)*

- संधि स्वीकार करने वाला देशी राज्य कंपनी की स्वीकृति के बिना किसी अन्य यूरोपीय या अंग्रेज़ों के शत्रु राज्य के व्यक्ति को अपने दरबार में शरण या नौकरी नहीं देगा।
- देशी राज्य अपनी **विदेश नीति को कंपनी को सुपुर्द** कर देगा। वह बिना कंपनी की अनुमति के किसी अन्य राज्य से युद्ध, संधि या मैत्री नहीं कर सकेगा।
- देशी राज्यों की सुरक्षा के लिये कंपनी उन राज्यों में अंग्रेज़ी सेना रखेगी। सेना का खर्च उस राज्य को ही वहन करना होगा। **सेना के खर्च** के लिये नकद वार्षिक धनराशि या राज्य का **कुछ इलाका कंपनी को** सुपुर्द करना होगा।
- देशी रियासतें अपने दरबार में एक **ब्रिटिश रेज़िडेंट** रखेंगी और उसी के परामर्श से रियासत का शासन प्रबंध करेंगी।
- ब्रिटिश भारतीय नरेशों के **आंतरिक शासन में कोई हस्तक्षेप नहीं** करेंगे।
- अंग्रेज़ उस नरेश की आंतरिक एवं बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा करेंगे।

प्रभाव *(Effects)*

सकारात्मक (कंपनी के दृष्टिकोण से)

- फ्राँसीसियों का प्रभाव भारतीय नरेशों के राज्यों से पूर्णत: समाप्त हो गया क्योंकि अब उन्हें वहाँ नौकरी करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता था।
- सभी देशी राज्यों को नि:शस्त्र एवं एक-दूसरे से पृथक् कर दिया गया क्योंकि उनकी विदेश नीति अब अंग्रेज़ों के हाथों में चली गई। फलत: वे अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघ या गुट बनाने से वंचित हो गए। इससे अंग्रेज़ों को एक-एक करके अपने सभी विरोधी भारतीय नरेशों को समाप्त करने की सुविधा मिली।

अध्याय
3

ब्रिटिश राज की प्रारंभिक संरचना एवं प्रशासनिक संगठन (Early Structure of British Raj and Administrative Organization)

3.1 ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था का आधार	3.7 चार्टर अधिनियम, 1813
3.2 द्वैध शासन	3.8 चार्टर अधिनियम, 1833
3.3 अधिनियमों के आलोक में प्रशासनिक व्यवस्था	3.9 चार्टर अधिनियम, 1853
3.4 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट	3.10 भारत सरकार अधिनियम, 1858
3.5 पिट्स इंडिया एक्ट, 1784	3.11 उपयोगितावाद एवं भारत
3.6 चार्टर अधिनियम, 1793	

1757 ई. में प्लासी विजय के पश्चात् ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी, जो एक व्यापारिक संस्था थी, शनैः-शनैः साम्राज्य की स्वामिनी बन गई। कंपनी ने अपने साम्राज्य विस्तार के क्रम में बहुत सारे क्षेत्रों को विजित किया। अतः इन क्षेत्रों में कंपनी को अपने हितों की पूर्ति के लिये सुदृढ़ प्रशासनिक संगठन की ज़रूरत थी।

आरंभ में कंपनी ने भारत स्थित अपने इलाकों का प्रशासन भारतीयों के हाथ में छोड़ दिया, किंतु अपने उद्देश्यों में प्राप्ति की कमी को देखकर अंग्रेज़ों ने प्रशासन को अपने हाथ में ले लिया। वारेन हेस्टिंग्स और कार्नवालिस के समय से नई व्यवस्था की नींव अंग्रेज़ी प्रशासनिक व्यवस्था के ढाँचे पर रखी गई और समय-समय पर नई आवश्यकताओं, नए अनुभवों और नए विचारों के फलस्वरूप प्रशासनिक संरचना में व्यापक परिवर्तन हुए। मगर इन परिवर्तनों के दौरान साम्राज्यवाद के व्यापक उद्देश्यों को कभी नहीं भुलाया गया।

3.1 ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था का आधार *(Base of British Administrative System)*

- वस्तुतः कंपनी शासन के दौरान प्रशासन के तीन महत्त्वपूर्ण केंद्र थे-
  (i) ब्रिटिश सरकार द्वारा नियंत्रित बोर्ड ऑफ कंट्रोल
  (ii) कंपनी के संचालकगण यानी कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स
  (iii) भारत का गवर्नर जनरल।
- भारत में ब्रिटिश प्रशासन तीन स्तंभों पर टिका हुआ था- नागरिक सेवा (Civil Services), सेना और पुलिस। इस प्रशासनिक संरचना के विकास का कारण था- कानून और व्यवस्था को बनाए रखना तथा ब्रिटिश शासन को स्थायी बनाना। कानून और व्यवस्था के अभाव में ब्रिटिश सौदागर व विनिर्माता अपनी वस्तुओं को भारत के कोने-कोने में बेचने की उम्मीद नहीं रख सकते थे।
- विदेशी होने के कारण अंग्रेज़ भारतीय जनता का स्नेह पाने की आशा नहीं कर सकते थे, इसलिये उन्होंने भारत पर अपना नियंत्रण बनाए रखने के लिये जनसमर्थन की बजाय शक्ति का सहारा लिया। ब्रिटिश शक्ति और प्रशासनिक व्यवस्था के चार आधार स्तंभ निम्नलिखित हैं–

सिविल सेवा *(Civil Services)*

- सिविल सेवा का उद्भव ईस्ट इंडिया कंपनी की व्यापारिक व्यवस्था से हुआ। 1765 ई. में कंपनी की सेवा में निम्नतम पद **'राइटर'** का था जिसकी नियुक्ति डायरेक्टर्स द्वारा की जाती थी। इन कर्मचारियों के वेतन बहुत कम थे। अतः अतिरिक्त आय की पूर्ति हेतु इन्हें कुछ निजी व्यापार की अनुमति थी। जब कंपनी एक क्षेत्रीय शक्ति बन गई, तब इन्हीं कर्मचारियों ने प्रशासनिक कार्य आरंभ कर दिये। वे अत्यन्त भ्रष्ट हो गए और स्थानीय बुनकरों, सौदागरों का उत्पीड़न कर व राजाओं, नवाबों से घूस लेकर अपार धन संपत्ति अर्जित की। इससे कंपनी की प्रशासकीय सेवा में भ्रष्टाचार एवं अनुशासनहीनता फैली।

अध्याय
4

ब्रिटिश भू-राजस्व प्रशासन
British Land Revenue Administration

4.1 स्थायी बंदोबस्त	4.3 महालवाड़ी व्यवस्था
4.2 रैयतवाड़ी बंदोबस्त	4.4 ब्रिटिश भू-राजस्व व्यवस्था का प्रभाव

भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्तार और सुदृढ़ीकरण हेतु कंपनी को अत्यधिक धन की ज़रूरत थी। कच्चे माल की खरीददारी, सिविल तथा सैनिक अधिकारियों के वेतन तथा भारतीय ग्रामों व दूर-दराज़ के क्षेत्रों में उपनिवेशवाद की पूरी-पूरी घुसपैठ के लिये कंपनी को भारतीय राजस्व की आवश्यकता थी, जिसका प्रमुख स्रोत भू-राजस्व (मालगुजारी) था। वस्तुत: ब्रिटिश प्रशासनिक व न्याय प्रणाली में जितने भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए उनका लक्ष्य भू-राजस्व (मालगुजारी) का संग्रह करना ही था। इस प्रकार ब्रिटिश ने आवश्यकतानुसार भारत में तीन भिन्न-भिन्न भू-राजस्व प्रणालियाँ बनाईं। इन प्रणालियों में ऊपरी अंतर चाहे जो रहा हो, पर मूल लक्ष्य एक ही रहा और वह था भू-राजस्व की अधिकाधिक वसूली। इन प्रणालियों में निरंतरता और परिवर्तन का कारण सिर्फ प्रयोग पर आधारित नीतियों का क्रियान्वयन ही नहीं बल्कि उसके पीछे यूरोप में प्रचलित विचारधाराएँ तथा स्थानीय परिस्थितियाँ भी सम्मिलित रूप से उत्तरदायी थीं। स्थायी बंदोबस्त का आधार मुख्यत: इंग्लैंड और फ्राँस में प्रचलित वाणिज्यवादी आर्थिक विचारधारा थी, जिसके अनुसार समाज में स्थिरता कृषि के विकास तथा सम्पत्ति की सुरक्षा से ही संभव है। दूसरी तरफ यूरोप में प्रचलित माल्थस तथा रिकार्डो के किराए के सिद्धांत से संबंधित उपयोगितावादी, उदारवादी विचारधारा पर बल दिया गया जिसमें किराए एवं किसानों के हित पर बल दिया गया। फलत: बिचौलियों को समाप्त कर रैयतवाड़ी तथा महालवाड़ी भू-राजस्व प्रणालियाँ लाई गईं।

4.1 स्थायी बंदोबस्त *(Permanent Settlement)*

- कंपनी ने 1765 में बंगाल की दीवानी प्राप्त की और भू-राजस्व वसूल करना शुरू किया। द्वैध शासन के तहत कंपनी ने आरंभ में पुरानी मालगुजारी प्रणाली को जारी रखने का प्रयास किया किंतु वसूली राशि की मात्रा बहुत बढ़ा दी। 1762-63 ई. में 64.5 लाख रुपए से बढ़कर कंपनी सरकार की दीवानी के पहले वर्ष (1765-66) में वसूली 147 लाख रुपए हो गई। इस प्रकार किसानों का अत्यधिक शोषण हुआ।
- भू-राजस्व व्यवस्था में व्याप्त असंगतियों के कारण **वारेन हेस्टिंग्स** ने 1772 ई. में नई व्यवस्था लागू की। उसने भू-राजस्व वसूली के अधिकार को नीलामी पर लगाकर उसे सबसे बड़ी बोली लगाने वाले को दे दिया अर्थात् ठेके पर देने की व्यवस्था **'इजारेदारी'** शुरू की। यह व्यवस्था भी सफल नहीं हुई, क्योंकि ज़मींदार तथा दूसरे सटोरिये एक-दूसरे से बढ़कर बोली लगाते थे इसलिये मालगुजारी की रकम तो बढ़ गई पर वास्तविक वसूली प्रतिवर्ष घटती-बढ़ती रही थी। इससे कंपनी की आय एक ऐसे समय में अस्थिरता का शिकार हुई जब उसे पैसे की सख्त ज़रूरत थी। इसके अलावा खेती में सुधार के लिये न रैयत कोई प्रबंध करते और न ज़मींदार, क्योंकि उन्हें पता ही नहीं होता था कि अगले वर्ष कितने की बोली लगेगी और वसूली का अधिकार किसे मिलेगा?
- 1786 ई. में कार्नवालिस ने इस अनिश्चितता को समाप्त करने की योजना बनाई और स्थायी बंदोबस्त की व्यवस्था लागू की।

पृष्ठभूमि *(Background)*

इस समय अंग्रेज़ों के सामने लगान व्यवस्था से संबंधित मुख्य समस्याएँ निम्नलिखित थीं-

1. समझौता किससे किया जाए-ज़मींदार या किसान से?
2. राज्य (ब्रिटिश) को पैदावार का कितना भाग लगान के रूप में प्राप्त हो?
3. समझौता स्थायी रूप से किया जाए या कुछ वर्षों के लिये?

अध्याय
5

ब्रिटिश शासन का आर्थिक प्रभाव (Economic Effects of British Rule)

5.1 कृषि का वाणिज्यीकरण
5.2 धन का निष्कासन
5.3 धन निकासी की अवधारणा का आलोचनात्मक परीक्षण
5.4 वि-औद्योगीकरण
5.5 ब्रिटिश भारत में अकाल
5.6 ब्रिटिश उपनिवेशवाद
5.7 ब्रिटिश उपनिवेशवाद का विभिन्न वर्गों पर प्रभाव

5.1 कृषि का वाणिज्यीकरण *(Commercialisation of Agriculture)*

ब्रिटिश कृषि नीति का एक महत्त्वपूर्ण अंग भारतीय कृषि का वाणिज्यीकरण था। कृषि के वाणिज्यीकरण का अर्थ- इस प्रकार के कृषि उत्पादन की प्रक्रिया की शुरुआत करना है जिसमें कृषि उत्पादों का प्रयोग (उपयोग) व्यापारिक मुनाफे के लिये किया जा सके। प्राक् ब्रिटिश भारत में उत्पादन उन वस्तुओं का होता था जो मानव के लिये आवश्यक थीं तथा जिनका प्रयोग विनिमय के लिये होता था बाज़ार के लिये नहीं, लेकिन अब किसान केवल उन वस्तुओं को उगाने लगा जिनका देशी और विदेशी बाज़ारों के दृष्टिकोण से अधिक मूल्य था। इस तरह कृषि के स्वरूप में मूलभूत परिवर्तन हुआ।

कृषि के वाणिज्यीकरण के उत्तरदायी कारक *(Responsible Factors for Commercialisation of Agriculture)*

- ब्रिटेन में औद्योगीकरण ज़ोरों पर था और वहाँ कच्चे माल की आवश्यकता थी। अत: ऐसी फसलों के उत्पादन पर बल दिया गया जो ब्रिटिश उद्योगों एवं मज़दूरों की खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।
- भारत में पूंजीवादी व्यवस्था बढ़ने के साथ-साथ तथा नए भूमि संबंधों एवं लगान नीति के कारण किसान को अब नकद राशि की आवश्यकता थी। इसलिये किसान उन फसलों को उगाने के लिये मजबूर होने लगा जिनका बाज़ार में क्रय-विक्रय हो सके।
- 1853 ई. के बाद ब्रिटिश पूंजीपतियों द्वारा भारत में पूंजी निवेश के कारण नील, चाय, कॉफी और रबर जैसी नकदी फसलों की खेती पर ज़ोर दिया गया।
- ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण पहलू भारतीय वस्तुओं का निर्यात करना तथा निर्यात के माध्यम से लाभांश प्राप्त करना था और निर्यात के अंतर्गत **कृषि उत्पादों** के निर्यात को महत्त्व दिया जाता था। यह निर्यात कृषि के वाणिज्यीकरण के माध्यम से तेज़ी से संभव था।
- ईस्ट इंडिया कंपनी का चीन के साथ होने वाले व्यापार में व्यापारिक संतुलन चीन के पक्ष में था। कंपनी को इस व्यापारिक संतुलन को अपने पक्ष में करने की आवश्यकता थी, इसलिये कंपनी ने भारत में ही चाय की खेती पर बल देकर चीन से होने वाले चाय के आयात को कम कर दिया। साथ ही, भारत में अफीम की खेती को बढ़ावा दिया ताकि इसका निर्यात चीन को करके संतुलन अपने पक्ष में किया जा सके।
- यातायात सुविधाओं का विकास भी कृषि के वाणिज्यीकरण में सहायक सिद्ध हुआ। अब शहर-ग्राम संबंधों में अलगाव की स्थिति समाप्त हुई। गाँवों व शहरों के आपस में जुड़ जाने से भी कृषि के वाणिज्यीकरण को बढ़ावा मिला।

प्रक्रिया *(Process)*

- नकदी फसलों, जैसे- चाय, कॉफी, अफीम, कपास आदि की खेती पर बल दिया गया।
- क्षेत्र-विशेष की भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखकर विशेष प्रकार के फसल उत्पादन पर बल दिया गया, जैसे- महाराष्ट्र में काली मिट्टी की उपलब्धता के कारण कपास की खेती पर बल, बंगाल में केवल जूट के उत्पादन पर,

अध्याय
6

आधुनिक उद्योगों का सीमित विकास (Limited Development of Modern Industries)

6.1 ब्रिटिश भारत में औद्योगिक विकास	6.3 रेलवे का विकास
6.2 टेलीग्राफ एवं डाक सेवाएँ	6.4 ग्रामीण ऋणग्रस्तता

भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास मूलत: औपनिवेशिक राज्य के संदर्भ में हुआ। औपनिवेशिक राज्य ने विदेशी पूंजीवादी उद्योग को भारत पर लाद दिया और इन पूंजीवादी उद्योगों को लाद देने से भारत में पूंजीवाद का स्वाभाविक विकास नहीं हो सका। भारत में पूंजीवादी औद्योगिक विकास समान रूप से विकसित नहीं हुआ। इसमें दो विपरीत व अंतर्विरोधी तत्त्व थे- **विदेशी उद्योग,** जिसका जन्म ब्रिटिश पूंजीवाद की आवश्यकताओं के कारण हुआ तथा **भारतीय पूंजीवाद,** जो आंतरिक विकास से उत्पन्न हुआ था।

भारत के पूंजीवादी विकास के तीन विभिन्न चरण हैं- प्रत्येक चरण के विकास में विदेशी व स्वदेशी पूंजी का अलग-अलग महत्त्व है।

प्रथम चरण (1850-1914)

इस काल में निर्यात किये जाने वाले ऐसे माल का उत्पादन हुआ जो राष्ट्र के लिये लाभदायक था, जैसे- पटसन, चाय इत्यादि। इसके साथ-साथ उस माल का भी उत्पादन हुआ जिसमें विदेशी प्रतिद्वंद्विता गंभीर नहीं थी, जैसे- मोटा कपड़ा। भारतीय पूंजी का क्षेत्र उद्योग की बजाय सट्टेबाज़ी, ऋण देना तथा घरेलू व्यापार था। इस काल में वास्तविक औद्योगिक क्रियाकलाप भारतीय अर्थव्यवस्था में निम्नतम स्तर पर थे।

दूसरा चरण (1914-1939)

इस काल में उपभोक्ता वस्तुओं का घरेलू मंडियों के लिये अत्यधिक उत्पादन हुआ तथा इसी चरण में युद्ध, सीमा शुल्क तथा आर्थिक संकट के कारण इन वस्तुओं का आयात कम हुआ। इस काल में विदेशी पूंजी व स्वदेशी उद्योगों में गहरा अंतर्विरोध था क्योंकि विदेशी औपनिवेशिक नीति भारत में **भारी उद्योगों की स्थापना** के विरुद्ध थी।

तीसरा चरण (1939-1947)

इस काल में **घरेलू मंडी** के लिये **भारी उद्योगों की स्थापना** हुई, परंतु बाज़ार के बहुत सीमित होने के कारण उत्पादित माल की लागत पूंजी अधिक थी। इस काल में भारत में उद्योगों का निर्माण करने के लिये काफी पूंजी विद्यमान थी परंतु प्रौद्योगिकी (Technology) के अभाव के कारण उसे विदेशी सहायता पर निर्भर रहना पड़ा।

6.1 ब्रिटिश भारत में औद्योगिक विकास *(Industrial Development in British India)*

प्रथम चरण *(First Phase) : 1850-1914*

- ब्रिटेन में औद्योगिक वर्ग के उदय से कंपनी के एकाधिकार का अंत (1833 तक) हो गया और ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने एक नया मोड़ ले लिया। औपनिवेशिक राज्य ने ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग की एजेंसी के रूप में सहायता करते हुए भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास किया जिससे ब्रिटिश निजी पूंजी का भारत में निवेश हो सके।
- ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग की सहायता से **रेलवे, बागान, जूट एवं कोयला उद्योग** का विकास हुआ।
- **रेलवे** का निर्माण दो निजी कंपनियों द्वारा किया गया। इन्हें लागत पूंजी पर 4.5% और 5% लाभ की गारंटी दी गई। इसने ब्रिटिश औपनिवेशिक आवश्यकताओं की पूर्ति की।
- ब्रिटिश पूंजीपतियों ने चाय, कॉफी, रबर और नील के बागानों में निवेश किया। जूट उद्योग पर ब्रिटिश पूंजीपतियों का एकाधिकार था। इन ब्रिटिश उद्यमों को भारत से सस्ता श्रम और रेशा प्राप्त हो जाता था।
- **कोयले** के उद्यमों में ब्रिटिश पूंजी लगाई गई। कोयला खानों के विकास का रेलों के निर्माण से घनिष्ठ संबंध था।

अध्याय
7

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का आर्थिक प्रभाव (Economic Effect of British Colonial Rule)

7.1 ब्रिटिश शासन का आर्थिक प्रभाव 7.2 आधुनिक उद्योगों का विकास

7.1 ब्रिटिश शासन का आर्थिक प्रभाव *(Economic Effect of British Rule)*

ब्रिटिश विजय का भारत पर स्पष्ट और गहरा प्रभाव पड़ा। भारतीय अर्थव्यवस्था का शायद ही कोई ऐसा पहलू रहा, जिसमें अच्छी या बुरी दिशा में पूरे ब्रिटिश शासनकाल में परिवर्तन नहीं हुआ।

परंपरागत अर्थव्यवस्था का विघटन *(Disintegration of Traditional Economy)*

- अंग्रेज़ों ने जो आर्थिक नीतियाँ अपनाईं उनसे भारत की अर्थव्यवस्था का रूपांतरण एक औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में हो गया, जिसके स्वरूप और ढाँचे का निर्धारण ब्रिटिश अर्थव्यवस्था की ज़रूरतों के अनुसार किया गया। इस दृष्टि से ब्रिटिश विजय पहले की सभी विदेशी विजयों से भिन्न थी। पहले के सभी विजेताओं ने भारतीय राजनीतिक शक्तियों को उखाड़ फेंका मगर उन्होंने देश के आर्थिक ढाँचे में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं किये। वे धीरे-धीरे भारतीय राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन का भाग बन गए। किसान, दस्तकार और व्यापारी अपनी ज़िंदगी पहले की तरह ही जीते रहे। स्वावलंबी ग्राम अर्थव्यवस्था की बुनियादी आर्थिक बनावट को सदा बनाए रखा गया। शासकों के बदलने का मतलब था उन कर्मचारियों का परिवर्तन जो किसान के अधिशेष को वसूला करते थे।
- मगर ब्रिटिश विजेता बिल्कुल भिन्न थे। उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था के परंपरागत ढाँचे को पूरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया। इसके अलावा, वे कभी भी भारतीय जीवन का अभिन्न अंग नहीं बन सके। वे भारत में हमेशा विदेशी बने रहे, भारतीय संसाधनों का उपयोग करते रहे और भारतीय समृद्धि को नज़राने के रूप में ले जाते रहे। भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश व्यापार और उद्योग के हितों के अधीन करने के अनेक व विविध परिणाम हुए।

दस्तकारों और शिल्पकारों की बर्बादी *(Ruination of Craftsmen)*

- शहरी हस्तशिल्पों का एकाएक और बहुत जल्द पतन हो गया। इन शिल्पों के कारण ही भारत का नाम समूची सभ्य दुनिया में शताब्दियों से लिया जाता था। **इस पतन का मुख्य कारण था:** इंग्लैंड से आयात की जाने वाली मशीनों द्वारा बनाई गई सस्ती वस्तुओं के साथ प्रतिद्वंद्विता। जैसा कि हम देख चुके हैं, अंग्रेज़ों ने 1813 ई. के बाद एकतरफा मुक्त व्यापार की नीति भारत पर लाद दी और ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं, विशेषकर सूती वस्त्रों की तुरंत बड़ी भरमार हो गई। आदिम तरीकों से बनी भारतीय वस्तुएँ भाप से चलने वाली शक्तिशाली मशीनों द्वारा बड़े पैमाने पर बनाई गई वस्तुओं की प्रतिद्वंद्विता में नहीं टिक सकीं।
- भारतीय उद्योगों, विशेषकर ग्रामीण दस्तकार उद्योगों की बर्बादी, रेलवे के बनते ही काफी तेज़ी से हुई। रेलवे द्वारा ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओं को देश के सुदूर गाँवों में पहुँचाने और परंपरागत उद्योगों की जड़ें खोदने में सहायता मिली। जैसा कि **अमेरिकी लेखक डी. एच. बुकानन** ने लिखा है: **अलग-थलग रहने वाले स्वावलंबी गाँव के कवच को इस्पात की रेल ने बेध दिया तथा उसकी प्राण शक्ति को क्षीण कर दिया।**
- सूत कातने तथा सूती कपड़ा बुनने के उद्योगों को सबसे अधिक धक्का लगा। रेशमी और ऊनी वस्त्र उद्योगों की हालत भी कोई अच्छी नहीं रही। लोहा, मिट्टी के बर्तन, शीशा, कागज़, धातु, बंदूकें, जहाज़रानी, तेलघानी, चमड़ा शोधन और रंगाई उद्योगों की हालत भी बुरी हो गई।

अध्याय
8

ब्रिटिश सामाजिक-सांस्कृतिक नीतियाँ (British Social-Cultural Policies)

8.1 ब्रिटिश सामाजिक-सांस्कृतिक नीति के विभिन्न चरण
8.2 भारत में ईसाई मिशनरी
8.3 ब्रिटिश समाज सुधार की नीति

ब्रिटिश सरकार ने अपने राज्य विस्तार एवं प्रशासनिक तंत्र के विकास के साथ-साथ भारत के संदर्भ में सामाजिक-सांस्कृतिक नीति का भी विकास किया। यह नीति ब्रिटिश औपनिवेशिक आवश्यकतानुसार समय-समय पर परिवर्तित होती रही। इस नीति के तहत जहाँ आरंभ में तटस्थता की नीति अपनाई गई वहीं बाद में भारतीय सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया गया साथ ही आधुनिक शिक्षा व्यवस्था लागू की गई। किंतु 1857 ई. के विद्रोह के पश्चात् ब्रिटिश दृष्टिकोण सुधारों के प्रति उदासीन व विरोधी हो गया। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने सामाजिक-सांस्कृतिक नीति के तहत सुधार कार्य तो किये किंतु उनका लक्ष्य भारत का आधुनिकीकरण करना नहीं था बल्कि अपनी व्यापारिक ज़रूरतों एवं राजनीतिक-प्रशासनिक आवश्यकताओं के चलते थोड़ा बहुत परिवर्तन लाना था। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से ब्रिटिश सामाजिक-सांस्कृतिक नीति के विकास को चार चरणों में बाँटकर देखा जा सकता है-

8.1 ब्रिटिश सामाजिक-सांस्कृतिक नीति के विभिन्न चरण *(The Different Phases of British Social-Cultural Policy)*

प्रथम चरण *(First Phase) : 1772 – 1813*

'प्राच्यविदों का प्रभाव एवं सामाजिक तटस्थता की नीति'

- कंपनी ने अपने शासन के आरंभिक दौर में आर्थिक और राजनीतिक मामलों के संदर्भ में ही हस्तक्षेप किया। सामाजिक एवं सांस्कृतिक मामलों में उन्होंने यथास्थिति बनाए रखी। यहाँ तक कि ईसाई धर्म के अनुयायी होने के बावजूद ब्रिटिश सरकार ने इस धर्म के प्रसार और भारतीय धर्म की आलोचना का प्रयास नहीं किया। उन्हें इस बात का एहसास था कि ऐसा करने से नवस्थापित कंपनी शासन को अनेक मोर्चों पर चुनौतियाँ झेलनी पड़ेंगी और उनका मुकाबला जनाक्रोश से हो जाएगा।
- इस काल में ब्रिटिश अधिकारियों व प्रशासकों का एक वर्ग भारतीय समाज, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य को श्रेष्ठ मानता था जो प्राच्यविद् (भारतविद्, Orientalist) कहलाया। इनमें प्रमुख थे- वारेन हेस्टिंग्स, जेम्स प्रिंसेप, जोनाथन डंकन, थामस मुनरो आदि। **प्राच्यविदों** ने भारतीय समाज और संस्कृति को समझने हेतु भारतीय भाषा और साहित्य के अध्ययन पर बल दिया। इस क्रम में वारेन हेस्टिंग्स के समय एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल (1784 ई.) की स्थापना हुई। 'मनुस्मृति', 'गीता' एवं 'फतवा-ए-आलमगिरी' का अनुवाद अंग्रेज़ी में हुआ (जोंस द्वारा)। इसके अतिरिक्त संस्कृत कॉलेज (वाराणसी) तथा मदरसा की स्थापना (कलकत्ता) भी की गई।
- वस्तुतः प्राच्यविदों का यह दृष्टिकोण औपनिवेशिक हितों से परिचालित था। भारत पर शासन करने के लिये भारतीय भाषा साहित्य का अध्ययन ब्रिटिशों के लिये ज़रूरी था। दूसरी बात संस्कृत, अरबी, फारसी पर आधारित शिक्षा पर बल देने के पीछे ब्रिटिश सरकार की यह कूटनीति दिखाई देती है कि इसके माध्यम से भारतीयों को जातियों एवं धर्मों में विभाजित किया जा सके, उन्हें आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से दूर रखा जाए जो ब्रिटिश साम्राज्य के हित में था।

द्वितीय चरण *(Second Phase) : 1813 – 1857*

- 1813 ई. के पश्चात् भारत में ब्रिटिश सामाजिक-सांस्कृतिक नीति में बदलाव आया। अब सामाजिक, सांस्कृतिक मामलों में ब्रिटिश सरकार ने प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप किया। वस्तुतः ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप बड़ी मात्रा

अध्याय
9

ब्रिटिश भारत में आधुनिक शिक्षा (Modern Education in British India)

9.1 आंग्ल-प्राच्य विवाद	9.6 प्रेस पर प्रतिबंध
9.2 ब्रिटिश भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रसार	9.7 आधुनिक मातृभाषा साहित्य का उदय
9.3 पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव	9.8 राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का विकास
9.4 अंग्रेज़ी शिक्षा एवं राष्ट्रवाद	9.9 विज्ञान की प्रगति
9.5 ब्रिटिश भारत में आधुनिक प्रेस का विकास	

भारत में आधुनिक शिक्षा का आरंभ अंग्रेज़ों के द्वारा किया गया। इसमें मुख्यत: तीन एजेंसियाँ उत्तरदायी थीं- विदेशी ईसाई मिशनरी, ब्रिटिश सरकार और प्रगतिशील भारतीय।

पृष्ठभूमि *(Background)*

- एक व्यापारिक मुनाफा कमाने वाली संस्था के रूप में ईस्ट इंडिया कंपनी ने आरंभ में आधुनिक शिक्षा के विकास में नाममात्र की दिलचस्पी ली। वारेन हेस्टिंग्स ने अपने प्रयासों से कलकत्ता मदरसा की स्थापना (1781) की जिसमें अरबी, फारसी की शिक्षा दी जाती थी। 1791 ई. में जोनाथन डंकन ने बनारस में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की।
- अंग्रेज़ धर्म प्रचारक और ईसाई मिशनरियों द्वारा भी शिक्षा के प्रसार हेतु प्रयत्न किये गए। कैरी, टॉम्स, मार्शमैन, वार्ड जैसे पादरियों ने कलकत्ता के निकट सेरामपुर में ईसाई धर्म एवं आंग्ल शिक्षा का प्रसार किया।
- इसी प्रकार राजा राममोहन राय, राधाकांत देव, तेजसचंद, रायबहादुर आदि के प्रयासों से शिक्षा की प्रगति हुई।
- व्यक्तिगत एवं निजी संस्थाओं द्वारा शिक्षा के प्रसार हेतु किये जा रहे प्रयासों को देखते हुए कंपनी ने भी शिक्षा के महत्त्व को समझा। फलस्वरूप 1813 ई. के एक्ट से कंपनी की शिक्षा नीति प्रारंभ हुई।

उद्देश्य *(Objective)*

- प्रशासन का खर्च कम करने के उद्देश्य से सरकार शिक्षित भारतीयों की संख्या बढ़ाना चाहती थी, जिससे प्रशासन एवं ब्रिटिश व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में छोटे कर्मचारियों की बढ़ती हुई ज़रूरतों को पूरा किया जा सके अर्थात् एक ऐसा वर्ग पैदा करना जो रक्त और रंग की दृष्टि से भारतीय हो मगर रुचि, विचार, आचरण एवं बुद्धि की दृष्टि से अंग्रेज़ हो ताकि यह वर्ग सरकार और शासितों के बीच दुभाषिये का काम कर सके।
- शिक्षित भारतीय इंग्लैंड में बनी वस्तुओं के बाज़ार का भारत में विस्तार करेंगे।
- पाश्चात्य शिक्षा भारतीय जनता को ब्रिटिश शासन स्वीकार करने के लिये प्रेरित करेगी।
- भारतीयों को सभ्य बनाए जाने के लिये शिक्षा का विकास करना ताकि श्वेत नस्ल भार के सिद्धांत को प्रामाणिकता दे सकें।
- शिक्षा नीति का मूल उद्देश्य औपनिवेशिक हितों की पूर्ति करना था।

विकास *(Development)*

- 1813 ई. के चार्टर एक्ट के द्वारा सर्वप्रथम कंपनी के संचालकों ने भारतीयों को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। इसके तहत गवर्नर जनरल को भारतीयों पर 1 लाख रुपए की राशि शिक्षा कार्यों पर खर्च करने के लिये आवंटित की गई, किंतु इस धन का उपयोग वर्षों तक नहीं किया गया।
- बहुत दिनों तक यह निश्चित नहीं हो सका कि 1813 ई. के एक्ट द्वारा स्वीकृत राशि को किस प्रकार की शिक्षा के विकास पर खर्च किया जाए? अंग्रेज़ विद्वान एवं शासन अधिकारी ही नहीं बल्कि भारतीय विद्वानों का भी इस बारे में

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी, फ्लोचार्ट तथा मानचित्र का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456